

आधुनिक भारत में दलित संघर्ष

डॉ० संजय कुमार सिंह*

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त गौरवशाली रही है, परिवर्तनशीलता इसकी विशेषता है। इस व्यवस्था में सर्व हित और सर्व सुख की कामना की गयी, लेकिन कालान्तर में सामाजिक रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास और असमानता ने भारतीय समाज में अपना स्थान बना लिया और समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने अधिकारों से वंचित हो गया। महावीर और बुद्ध द्वारा सबके हित, सबके सुख और सबके न्याय का प्रयास किया गया लेकिन यह पूर्ण रूप से फलीभूत नहीं हो सका। मध्यकाल में भक्तिकालीन संतो, सूफी संतो द्वारा मानवीय मूल्यों को स्थापित करने और जाति-पाति तोड़ने का प्रयास हुआ, लेकिन उसे भी आंशिक सफलता मिल सकी। आधुनिक काल में समाज सुधारक संतो ने सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए व्यापक आन्दोलन चलाये, जिससे इस व्यवस्था में परिवर्तन के लक्षण दिखायी देने लगे। तदुपरान्त दलितों में चेतना आयी जिसके फलस्वरूप दलित समाज के विभिन्न नेताओं ने दलित समाज के उत्थान का बीड़ा उठाया जिसमें ज्योतिबा फूले और डॉ० अम्बेडकर¹ का नाम उल्लेखनीय है।

भरण-पोषण की अर्थव्यवस्था पर आधारित गाँव में व्यक्तियों तथा समूहों के पारस्परिक सम्बंध समझौते के बजाय हैसियत पर आधारित रहे हैं अर्थात् व्यक्ति किस जाति या परिवार में जन्मा है, इसका विशेष महत्व रहा है। व्यक्ति के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण प्रायः इसके आधार पर होता आया है।² जाति-प्रथा ईश्वर प्रदत्त मानी जाती है जिसे धार्मिक स्वीकृति प्राप्त है। जाति-प्रथा का उद्भव चातुर्वर्ण्य में माना जाता है। पुरुषसूक्त में वर्णित यह व्यवस्था वर्णों की सोपानिक व्यवस्था के मूल पर प्रकाश डालने के साथ ही, इस व्यवस्था को दैवीय रूप से न्यायोचित भी बतलाती है।

मनु संहिता आदि के अनुसार धार्मिक ग्रन्थों तथा विधि-विधानों की व्याख्याता एवं भाष्य टीकाकार होने के नाते ब्राह्मण की स्थिति विशिष्ट थी³ जबकि उच्चतम योग्यताओं के बावजूद निम्न कहा जाने वाला वर्ग का सदस्य शूद्र ही बना रहता था। फलतः श्रम पर आधारित कहा जाने वाला विभाजन रूढ़ हो गया और इसमें वर्तमान जाति-प्रथा का रूप ग्रहण कर लिया। चार वर्ण, चार जातियों में परिणित हो गये। जाति-प्रथा का मूल अर्थ एवं प्रयोजन भी लुप्त हो गया। तत्पश्चात् विभिन्न व्यवसायों, प्रान्तीय अवरोधों, रहन-सहन और खान-पान की विभिन्नताओं, प्रथाओं तथा अंधविश्वासों के फलस्वरूप ये चार जातियाँ तीन हजार से अधिक जातियों में विभक्त हो गईं।

जाति-प्रथा ने समाज को दो मोटे भागों में बाँट दिया—अल्पसंख्यक सवर्ण और बहुसंख्यक अवर्ण व शासित जनता। सत्ता और ज्ञान पर अल्पसंख्यकों का अधिकार हो गया और दलित बहुसंख्यक जनसामान्य, सांस्कृतिक, राजनीतिक श्रेणीक्रम में निम्न स्तर पर ढकेल दिये गये।⁴ मोटे तौर पर इनकी तीन श्रेणियाँ थी—अस्पृश्य, असभ्य तथा अदर्शनीय। स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माण के समय इनकी संख्या लगभग छः करोड़ थी। उस समय की जनसंख्या का बीस प्रतिशत। देश के विभिन्न भागों में इनके लिए विभिन्न नामों का प्रयोग प्रचलित था, जातिच्युत अवर्ण, अस्पृश्य, पैरिया, पंचम्मा, अतिशूद्र, अन्त्यज आदि इन पर असंख्य कठोर सामाजिक प्रतिबन्ध निषेध आरोपित थे।

भारत के अनेक भागों में निम्न कहलाने वाली जातियाँ कुछ वस्त्र एवं आभूषण धारण करने तथा सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन या विलासिता की सामग्री का उपयोग करने के अधिकार से वंचित थीं। सामान्यतः अस्पृश्य पुरुषों का पहनावा पगड़ी, लंगोटी, घुटनों तक की लुंगी, कंधे पर कम्बल और हाथ में छड़ी जबकि स्त्रियाँ चोली तथा घुटने तक मोटे कपड़े की धोती पहनती थी। इसी प्रकार के निषेध छाते,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी०ए०वी० पी०जी० कॉलेज, वाराणसी

जूते के प्रयोग, सोने-चाँदी के आभूषण धारण करने के सम्बंध में प्रचलित थे। राजस्थान में दलितों द्वारा राजपूतों जैसी वेशभूषा, स्वर्ण आभूषण धारण करने पर पीटे जाने का उल्लेख मिलता है। उत्तर भारत, बंगाल और मद्रास में निम्न जातियों द्वारा वर के लिए घोड़े, पालकी आदि उपयोग किये जाने पर बहिष्कार तथा हिंसा के उदाहरण मिलते हैं।

सामान्यतः दलितों की स्थिति कष्टकर थी। सम्मानजनक व्यवसायों के द्वार इन दलित-दमित शिक्षा से वंचित जनों के लिए बंद थे। वे पुलिस तथा सैन्य सेवाओं में नहीं लिए जा सकते थे। उन्हें निम्न श्रेणी के अस्वच्छ धंधे ही अपनाने पड़ते थे जैसे मेहतर, भंगी, मोची आदि के कार्य। इनमें से कुछ भाग्यशाली लोग खेतिहर, काश्तकार, खेत मजदूर का कार्य करते थे जिसके बदले उन्हें गाँव वालों से अनाज मिलता था। मध्यकाल में इस्लामिक बन्धुत्व के दायरे से भी वे बाहर ही रहे। सम्भवतः सवर्ण हिन्दुओं के सम्भावित विरोध की वजह से मध्ययुगीन शासकों ने उन्हें सरदारों और सामन्तों की श्रेणी में शामिल नहीं किया। मध्ययुग में व्यापार-वाणिज्य की तीव्र समृद्धि से भी इनकी सामाजिक हैसियत उन्नत नहीं हुई। व्यापार और वाणिज्य के विकास एवं विस्तार के फलस्वरूप वैश्यों को इधर विशेष ध्यान देना पड़ा और कृषि तथा कारीगरी को शूद्रों के लिए छोड़ना पड़ा।⁵

उन्सवीं सदी के प्रारम्भ में जहाँ अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ कर भारतीय समाज को पाश्चात्य ज्ञान-धारा से अभिसिंचित करने का कार्य किया, वहीं दूसरी तरफ समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात हुआ और समाज सुधारकों ने जाति-पाँति तोड़ने, स्त्रियों के उत्थान, शिक्षा के उत्थान, अस्पृश्यता दूर करने के तरफ कदम बढ़ाये। इन समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, कार्वे, ज्योतिबा फूले का नाम श्रद्धा से लिया जा सकता है।

दलितों में तर्कणा व विद्रोह, संगठन और आन्दोलन की ओर मानव के रूप में अधिकारों का दावा प्रस्तुत करने के लिए आत्मावलम्बन की, चेतना जागृत हुई। हर अन्याय, भ्रष्टाचार, दासता, अन्धविश्वास के विरुद्ध संघर्ष की भावना पनपी। व्यापार-वाणिज्य, संचार-सम्पर्क, यातायात-परिवहन, नगरीकरण, विद्यालयों, चिकित्सालयों जैसी सार्वजनिक संस्थाओं के विकास ने जातिगत निषेधों, प्रतिबंधों को ढीला करने में जो सहयोग दिया, वह भी दलितों-दमितों के लिए प्रेरणास्पद था।⁶

उन्नीसवीं सदी के, दलितों के अग्रणी सुधारक ज्योतिबा फूले ने सामाजिक समता के लिए आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने पुणे में 1873 में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की जिसका उद्देश्य जातिगत भेद के परे व्यक्ति की प्रस्थिति व प्रतिष्ठा को स्थापित करना था। हिन्दू समाज के समस्त सदस्यों को सामान्य मानव अधिकार प्रदान करने से इन्कार करने वाली जाति-प्रथा के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन में महादेव गोविन्द रानाडे अग्रणी थे। वे सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन को सुधार के लिए आवश्यक मानते थे तथा हिन्दू धर्म को दुष्प्रवृत्तियों तथा अन्धविश्वासों से मुक्त करने को व्यग्र थे।⁷

बीसवीं शताब्दी प्रारम्भ होते-होते भारतीयों में व्यापक राष्ट्रीय लोकतंत्रात्मक चेतना पनप चुकी थी, भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रवेश हो चुका था। फलस्वरूप रेल बस, होटल, रेस्तरा का निर्माण और आधुनिक उद्योगों की स्थापना हुई जिसमें अवर्ण-सवर्ण सभी साथ-साथ आते-जाते और काम करते थे। इससे जातीय चेतना वर्गीय चेतना में तब्दील हो गयी। नवशिक्षित जनों के एक जागरूक बौद्धिक वर्ग का उदय हुआ, जो आधारभूत मानवीय अधिकारों तथा राजनीतिक माँगों के लिए संघर्ष करने वाला वर्ग था। इनके द्वारा आयोजित आन्दोलनों, सम्मेलनों में दलितों के उत्थान जैसे विषय पर विचार-विमर्श होने लगा।⁸

श्री नारायण गुरु ने 1902 में 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' की स्थापना किया, जिसका मूलमंत्र था, एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर। इन्होंने केरल के दलितों के उत्थान के लिए अनेक शिक्षण संस्थान और मंदिर बनवाये तथा दलितों को खान-पान की शुद्धता और शारीरिक स्वच्छता के माध्यम से

सुधार और प्रगति का संदेश दिया। इसके फलस्वरूप तीन दशकों में इझवा समुदाय ने बहुमुखी विकास किया।

1917 में डॉ० अम्बेडकर ने मताधिकार समिति के समक्ष बम्बई व्यवस्थापिका सभा में पृथक निर्वाचक मण्डल के माध्यम से जनसंख्या के अनुपात में दलितों के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व की मांग रखी। इसी वर्ष कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास कर जनता से अपील की कि वह ऐसी सामाजिक कुरीतियों को समाप्त कर दें, जिनके कारण पिछड़ों को हेय दृष्टि से देखा जाता है। राष्ट्रीय नेताओं में गांधी जी पहले नेता थो जिन्होंने छुआछूत के खिलाफ आवाज उठाते हुए कहा छुआछूत के खिलाफ संघर्ष, आजादी के लिए संघर्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं है।⁹ 1918 में बड़ौदा नरेश सायाजी राव गायकवाड़ की अध्यक्षता में प्रथम अखिल भारतीय दलित वर्ग का सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें दलित उत्थान जैसे प्रश्नों पर मंथन हुआ और अस्पृश्यता विरोधी घोषणा-पत्र प्रसारित हुआ।

‘दलित’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पिछड़ा आयोग रिपोर्ट के अनुसार सन् 1919 के लगभग हुआ और मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग को अनेक सरकारी निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। डॉ० अम्बेडकर ने दलितों में सामाजिक चेतना जगाने तथा उनके उत्थान के लिए 1920 में ‘मूकनायक’ पत्रिका निकाली। 1927 में अम्बेडकर ने ‘बहिष्कृत भारत’ नामक पत्रिका का सम्पादन किया जिसमें उन्होंने शोषित समाज को अपने अस्तित्व तथा सम्मान को पाने हेतु अधिकारों के प्रति सचेत किया। अम्बेडकर द्वारा दलित समस्याओं के प्रचार-प्रसार ने भारतीय समाज को दलितों के प्रति होने वाले अन्यायपूर्ण व्यवहार को खत्म करने को विवश किया।

1930 में गोलमेज सम्मेलन में दलित वर्ग के दो प्रतिनिधियों डॉ० अम्बेडकर और डॉ० दीवान बहादुर आर० श्रीनिवासन को बुलाया गया था इसमें डॉ० अम्बेडकर ने अछूतों का कुशलतापूर्वक प्रतिनिधित्व किया।¹⁰ उन्होंने अछूतों की दुःख भरी कहानी के वास्तविकता को विस्तृत रूप से सबके सामने प्रस्तुत किया। फलस्वरूप ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा किया। जिसके अन्तर्गत दलित वर्ग को प्रान्तीय असेम्बलियों में पृथक स्थान दिये गये और उन्हें दोहरे मतदान का अधिकार दिया गया। इसको लेकर गाँधी, डॉ० अम्बेडकर में मतभेद पैदा हो गया, लेकिन ‘पूना पैक्ट’ द्वारा इस पर सहमति बनी। तत्पश्चात् गाँधी ने ‘हरिजन’¹¹ का प्रकाशन आरम्भ कर दलित उत्थान, अस्पृश्यता मिटाने की दिशा में सार्थक प्रयास आरम्भ किया क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व चावदार तालाब, गुरुवायूर मंदिर, कालाराम मंदिर में दलितों के प्रवेश के सम्बन्ध में अवर्णों और सवर्णों के बीच गहरी खाई स्थापित हो चुकी थी।

डॉ० अम्बेडकर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था¹² को अवैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टि से हानिकारक समझते थे। उनका मानना था कि यह व्यवस्था न तो श्रम विभाजन पर आधारित है न ही व्यक्ति के मौलिक क्षमता पर आधारित है, बल्कि यह व्यक्ति के जन्म तथा माता-पिता के सामाजिक स्थितियों पर आधारित है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार यह व्यवस्था अस्पृश्यता की जड़ है क्योंकि हिन्दू समुदाय में आत्मसात करने के लिए इसका परित्याग आवश्यक है। डॉ० अम्बेडकर अस्पृश्यता के मुक्ति हेतु जिन मार्गों का आवलम्बन करने को कहा उनमें शिक्षित करो, संगठित करो और आन्दोलन करो था। उनका मानना था इसी से भारतीय समाज में न्याय, आजादी और समता स्थापित होगी। इस तरह देश के स्वतंत्रता संघर्ष के समय दलित उत्थान में दलित आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही।¹³ भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करते ही जाति व्यवस्था क्षीण हो चली, भारत के संविधान के मूलभूत अधिकारों में धर्म, जाति, लिंग, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव के निषेध को सम्मिलित किया गया, इससे दलितों में सामाजिक गतिशीलता तीव्र गति से विकसित हुई और दलितों को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में न्यायपूर्ण स्थान मिला।

संदर्भ :

1. प्रो० के० एल० कमल, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ० 265 ।
 2. एस० एन० श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जाति प्रथा तथा अन्य निषेध, पृ० 10 ।
 3. टी० आर० बुहलर, लॉज ऑफ मनु, VII, पृ० 27 ।
 4. जे० आर० काम्बले, राइज एण्ड अवेकनिंग ऑफ डिप्रेस्ड क्लासेज इन इण्डिया, पृ० 14-15 ।
 5. टी० आर० बुहलर, पूर्वोद्धृत, पृ० 10 ।
 6. शैलेन्द्र पांथरी, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, पृ० 290 ।
 7. वही, पृ० 289 ।
 8. प्रो० के० एल० कमल, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ० 265 ।
 9. विपिनचन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पृ० 200 ।
 10. जी० एस० लोखण्डे दि स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी, पृ० 204 ।
 11. घनश्याम शाह, भारत में सामाजिक आन्दोलन, पृ० 105 ।
 12. हरदान हर्ष, डॉ० भीमराव अम्बेडकर, पृ० 66 ।
 13. संगमजी विद्रोही, बुद्ध, अम्बेडकर, मार्क्स, पृ० 62 ।
-